International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(4): 55-57

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(4): 55-57
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 17-04-2015
Accepted: 12-05-2015

भोला नाथ
पीएच.डी. (संस्कृत) विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र जे.एन.यू.ए नई दिल्ली-११००६७

Correspondence
भोला नाथ
पीएच.डी. (संस्कृत) विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र जे.एन.यू.ए नई दिल्ली-११००६७

उपनिषद्–शांकरभाष्य में भौतिक प्रकाश का स्वरूप

भोला नाथ

भौतिक विज्ञान में सूर्य के प्रकाश पर अनेंक शोध हो रहे हैं। जिससे सूर्य प्रकाश के अनेक गुण प्रकाश में आये हैं। उपनिषद् ऋषियों ने भी कई जगहों पर सूर्य, चन्द्रमस् विद्युत् अग्नि आदि के प्रकाशों की चर्चा की है। उपनिषद् में सूर्य का सम्बन्ध विशेष रूप से प्राण से दिखाया गया है और यह सूर्य विशेष रूप से प्राणियों को प्रभावित करता है। वैज्ञानिक रूप से यह प्रसिद्ध है कि चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। फिर भी चन्द्रमा के प्रकाश का वनस्पतियों के लिये बडे. महत्त्व का होता है। उपनिषद् में चन्द्रमा को भी एक स्वप्रकाशित प्रकाश स्रोत माना गया है। उपनिषद् में प्रकाश स्रोत के रूप में अग्नि का उल्लेख है और उसकी सात जिह्वाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। उपनिषद् में एक स्थान पर सूर्य के सात चक्रों के रूप में प्रकाश के सात रंगों का उल्लेख प्राप्त होता है।

भौतिक प्रकाश पञ्चमहाभूतों से सम्बन्धित है। उपनिषद् दर्शन में महाभूतों की संख्या पाँच बताया गया है। जिसके अन्तरगत पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश परिगणित हैं। इन्हें स्थूल महाभूत कहा जाता है। इनकी उत्पत्ति सूक्ष्म महाभूतों से होती है। सूक्ष्म महाभूतों में गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द हैं। ये सूक्ष्म महाभूत अपञ्चीकृत अवस्था में होते हैं अर्थात् अपने शुद्ध रूप में वर्तमान होते हैं। इनमें अन्य भूतों का मिश्रण नहीं होता है। इसलिए इन्हें सूक्ष्म तन्मात्रा भी कहा जाता है। पञ्चीकरण प्रक्रिया के बाद गन्ध तन्मात्रा से पृथ्वी, रस तन्मात्रा से जल, रूप तन्मात्रा से अग्नि, स्पर्श तन्मात्रा से वायु तथा शब्द तन्मात्रा से आकाश महाभूत की उत्पत्ति होती है।

सूक्ष्म महाभूतों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि उस परमात्मा से सर्वप्रथम आकाश तन्मात्रा उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु तन्मात्रा, वायु से अग्नि तन्मात्रा, अग्नि से जल तन्मात्रा तथा जल से पृथ्वी तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई, *'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी'*।[1] इन सूक्ष्म महाभूतों की उत्पत्ति के अनन्तर पञ्चीकरण की प्रकृया से स्थूल महाभूतों की उत्पत्ति होती है। महाभूतों की उत्पत्ति एक क्रम से हुई है। इसलिए उत्तरोत्तर भूत अपने पूर्ववर्ती भूतों के गुणों को भी लिये रहते हैं। जैसे आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई। इसलिए वायु में अपना गुण तो होता ही है साथ ही आकाश का शब्द गुण भी होता है। इसी प्रकार अग्नि में अपने पूर्ववर्ती आकाश और वायु के गुण भी विद्यमान होंगे। जल में अपने पूर्ववर्ती आकाश, वायु और अग्नि के गुण तथा पृथ्वी में अपने पूर्ववर्ती चारों महाभूतों के गुण विद्यमान होंगे, क्योंकि कार्य में अपने कारण के गुण भी पाये जाते हैं। चूँकि कार्य भी अपने कारण में पहले से विद्यमान होता है।[2] इसीलिये उसकी उत्पत्ति होती है। जैसा कि गीता में भी कहा गया है, *'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'*।[3] यह एक मत है। दूसरे मत में पञ्चतन्मात्राओं के परस्पर पञ्चीकरण के बाद गुणों का मिश्रण होता है।[4] इन्हीं पञ्चमहाभूतों से सम्बन्धित प्रकाश को भौतिक प्रकाश कहा जाता है। इसे स्थूल प्रकाश भी कहा जा सकता है। भौतिक प्रकाश के अन्तरगत सूर्य, चन्द्रमस्, नक्षत्र, तारे, विद्युत् और अग्नि आदि सम्मिलित हैं।

वेद में सूर्य रूप प्रकाश : सूर्य वस्तुतः एक भौतिक पिण्ड है। इसकी चर्चा वैदिक काल से होती आ रही है। ऋग्वेद में एक सूक्त (ऋ.१.११५) सूर्य देवता को समर्पित है। जिसमें सूर्य की एक देवता के रूप में स्तुति की गयी है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति में विद्यमान पिण्डों और वनस्पतियों को एक चेतन देवता के रूप में देखा है। प्रकृति से ग्रहण करते हैं। देने के कारण उन्हें देवता कहा जाता है, *'दानात् देवः, दीव्यन्तीति देवः'*। सूर्य हमें प्रकाश, ऊर्जा, प्राण, जीवन देता है। इसलिए सूर्य देवता है। चन्द्रमा से हमें शीतलता, प्रकाश और प्राण मिलता है। इसलिए चन्द्रमा भी देवता है। सूर्योदय के सन्दर्भ में कठोपनिषद् कहती है कि प्राणात्मा से सूर्य उदित होता है और सूर्यास्त के समय पुनः प्राणात्मा में चला जाता है,*'यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति'* ।[5] इससे सूर्य और प्राण की घनिष्ठता का ज्ञान होता है। सूर्य और प्राण के परस्पर गहरे सम्बन्ध का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक स्थान पर सूर्य को साक्षात् प्राण ही कह दिया गया, *'प्राणावावदित्या'* ।[6]

प्राण और सूर्य की समानता : यह सूर्य भौतिक जगत् का एक ऐसा पिण्ड है जिसके आधार पर सभी प्राणी जीवित रहते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का आधार सूर्य ही है। सूर्य के विना पृथ्वी पर जीवन सम्भव नहीं है। इसका कारण है कि पृथ्वी पर विद्यमान जीवों और वनस्पतियों को सूर्य से प्राण ऊर्जा प्राप्त होती है। सूर्य प्राण ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। इसीलिए सूर्य को साक्षात् प्राण का रूप माना जाता है, *'प्राणावावदित्या..'*।[7]

सूर्य की प्रकाशरूपता : भौतिक रूप से भी सूर्य को एक प्रकाशमान पिण्ड के रूप में जाना जाता है। सूर्य पृथ्वी लोक को प्रकाश देता है। सूर्य से ही सभी वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं। सूर्य की इस प्रकाशन शक्ति के कारण ही इसकी तुलना नेत्र से की जाती है,*'सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः'*।[8] दूसरी जगह कहा गया है कि परमात्मा सूर्य में स्थित होकर ही संसार को प्रकाशित करता है,*'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयते अखिलं'*।[9] प्रश्नोपनिषद् में सत् और असत् के अधिष्ठान के रूप में प्राण तत्त्व को बताया गया है। इस प्रकार यह प्राण ही सूर्य के रूप में प्रकाश देता है,*'तपति एष सूर्य*।[10] सूर्य का प्रकाश वस्तुओं के रसों को सुखाने वाला होता है। रसों के सूख जाने से वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं। अपने इस संहारक गुण के कारण सूर्य का एक दूसरा नाम रुद्र भी है। सौम्य रूप से सब ओर से यह रक्षा करता है। इसलिए इसे सूर्य कहा जाता है। आकाश में स्थित ज्योति पुंजों में सबसे अधिक प्रकाशमान पिण्ड सूर्य है। इसी कारण इसे ज्योतिगणों का अधिपति कहा जाता है,*'इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता'*।[11]

सूर्य का भी एक लोक है। सूर्य की उपासना करने वाले साधक मृत्यु के पश्चात् सूर्य लोक को प्राप्त होते हैं। सूर्य लोक को प्राप्त करने का साधन ॐ की उपासना है।[12] अदिति का पुत्र होने से यह आदित्य कहलाता है। यह आदित्य पाँच पैरों (पाँच ऋतुओं) वाला है। प्राणियों का पोषण करता है इसलिए सबका पिता है। बारह महीनों में विभक्त होने से इसे १२ आकृतियों वाला बताया गया है। सूर्य के प्रकाश में प्राप्त सात रंगों को सूर्य के सात चक्र बताया गया है,*'पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिम्...'*।[13] आत्मज्ञानी पुरुषों ने सूर्य को जब अपनी अन्तर्चक्षु से देखा तो उसे निम्न रूपों में पाया। यह सूर्य विश्वरूप, रश्मिवान्, ज्ञान सम्पन्न है। ज्योतिर्मय तथा तापन शक्ति से युक्त है। इस सूर्य में असंख्य किरणें समायी हुई हैं। प्रजाओं में जो प्राणों का प्रवाह है उसका मूल सूर्य को पाया अर्थात् सूर्य के कारण ही प्रजायें प्राणवान् हैं,*'सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः'*।[14]

ईशोपनिषद् के १६वें मन्त्र में सूर्य को पूषा, एकर्षी, यम, सूर्य, प्राजापत्य आदि नाम दिया गया है। जगत् का पोषण करने के कारण इसे पूषा कहा जाता है। अकेला चलने के कारण इसे एकर्षी कहा जाता है। प्राणियों को नियमित करने के कारण यम कहलाता है। किरण प्राण और रसों को स्वीकार करने से सूर्य शब्द से अभिहित होता है। छान्दोग्योपनिषद् में ऊष्णता की दृष्टि से सूर्य और प्राण में समानता दिखायी गयी है। अदिति का पुत्र होने से सूर्य को आदित्य कहा जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में प्राण को भी आदित्य शब्द से बोधित किया गया है,*'प्राणावावदित्या'*।[15] सूर्य के लोहित रूप की प्रशंसा करते हुए उसे अन्तरिक्ष रूपी छत्ते का मधु कहा गया है।

तारे नक्षत्र और चन्द्रमस् : बृहदारण्यकोपनिषद् में ८ वसुओं के नाम बताये गये है। उनमें से चन्द्रमा और नक्षत्र भी हैं। अग्नि, पृथ्वी वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा तथा नक्षत्र सबको अपने में वसाये हुए हैं। इसलिए इन्हें वसु कहा जाता है।[16] छान्दोग्योपनिषद् में चन्द्रमा की गणना नक्षत्रों में की गयी है और उसे प्रधान नक्षत्र मानकर पूजा करने का विधान है।[17] सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि प्रकाशित होते हैं। इसलिये इन सबको प्रकाश का देवता कहा जाता है। वस्तुतः प्रकाशित होने के कारण इन्हें देवता शब्द से कहा जाता है,*'देवतानाम् दीप्तिमत्वात्'*।

चन्द्रमा और सूर्य का उल्लेख प्रायः एक साथ ही प्राप्त होता है। ये दोनों तेजस् के प्रतीक हैं। मुण्डकोपनिषद् में चन्द्रमा और सूर्य दोनों को परमात्मा का नेत्र बताया गया है। इन दोनों प्रकाश स्रोतों के माध्यम से परमात्मा जगत् को प्रकाशित करता है,*'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ...'*।[18] उपनिषद् ऋषि के अनुसार ये दोनों पिण्ड परमात्मा के नियन्त्रण में कार्य करते हैं। ऐतरेय उपनिषद् में चन्द्रमा की उत्पत्ति मन से बतायी गयी है,*'मनसश्चन्द्रमाः'*।[19]

विद्युत् रूप प्रकाश : उपनिषदीय दर्शन में अन्तरिक्षीय विद्युत् का उल्लेख प्रायः हुआ है। उस समय इलेक्ट्रानिक विद्युत् का आविष्कार नहीं हुआ था। आश्चर्य की बात है कि उपनिषद् में वर्णित विद्युत् शब्द इतना सुसंगत था कि आज भी विद्युत् शब्द का प्रयोग होता आ रहा है। इस प्रकार विद्युत् को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं १– अन्तरिक्षीय विद्युत् २– इलेक्ट्रानिक विद्युत्। उपनिषद् काल में अन्तरिक्षीय विद्युत् का उल्लेख सिर्फ प्रकाश के सन्दर्भ में हुआ है। जैसा कि कठोपनिषद् और श्वेताश्वतर दोनों में कहा गया है–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

कठोपनिषद् में ब्रह्म के प्रकाश की तुलना विद्युत् के प्रकाश से की गयी है। जिसमें कहा गया है कि ब्रह्म इन्द्र के सम्मुख जब उद्भूत हुआ तो विद्युत् के जैसा प्रकाशमान हुआ था। जिस प्रकार विद्युत् अन्धकार को विदीर्ण करके सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है। उसी प्रकार ब्रह्म भी कुछ समय प्रकाशित होते हुए इन्द्र के सम्मुख रहा।[20] एक स्थान पर उल्लेख है कि ब्रह्मज्ञानी पुरुष जब अपने स्थूल शरीर का त्याग करता है तो वह विभिन्न लोकों से होकर जाता है। अन्ततः ब्रह्मलोक पहुँचने से पहले विद्युत् लोक को पार करना पड़ता है।[21] इससे विद्युत् देवता और उसके लोकों का भी ज्ञान होता है।

ब्रह्म की जिज्ञासा करने वाला पुरुष जब योग साधना करता है तो उसे अनेक पदार्थों की अनुभूति होती है। इसी सन्दर्भ में श्वेताश्वतर उपनिषद् में एक स्थान पर उल्लेख है कि साधक को साधना के समय कुहरा, धूम, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनू, विद्युत्, स्फटिकमणि आदि का अनुभव होता है। उपनिषद् से हमें तड़ित विद्युत् के विषय में ज्ञान होता है। ऋग्वेद के इन्द्र सूक्त में तड़ित विद्युत् को वज्र के रूप में माना गया है। वहीं विद्युत् को भी एक देवता के रूप में माना गया है। सूर्य चन्द्रमा आदि के समान विद्युत् का भी अपना एक लोक है। जहाँ से होकर ब्रह्मज्ञानी अपने लोक को जाता है। इस विद्युत् के रक्त, शुक्ल और कृष्ण तीन रूप हैं। विदान या खण्डन करने के कारण विद्युत् के नाम से जाना जाता है।[22]

अग्नि का प्रकाश रूप : अग्नि हिन्दू धर्म में आग के देवता के रूप में जाना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अग्नि किसी भी हवि आदि खाद्य पदार्थ को जलाकर वायु के माध्यम से देवताओं और भूतात्माओं तक पहुँचा देता है। ऋग्वैदिक कालीन देवताओं में अग्नि का नाम दूसरे स्थान पर लिया जाता है। प्रथम स्थान पर इन्द्र देवता की स्तुति की गयी है। इन्द्र का स्तवन ऋग्वेद में लगभग २५० सूक्तियों में किया गया है। इसके बाद अग्नि देवता का स्थान आता है। ऋग्वेद में अग्नि की स्तुति लगभग २०० सूक्तियों में की गयी है। अग्नि देवता ऋग्वेद के प्रधान देवताओं में से एक है। इसीलिये ऋग्वेद का प्रथम सूक्त अग्नि देवता को समर्पित है। जिसका पहला मन्त्र है– *'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं होतारं रत्नधातमम्'* इत्यादि। वैदिक कालीन संस्कृति यज्ञ प्रधान थी। यज्ञ का कार्य विना अग्नि के पूरा नहीं हो सकता था। यज्ञ के समय सर्वप्रथम अग्नि का आधान किया जाता था। इसीलिये अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए यास्क ने लिखा है कि *'अग्निः अग्रणीः भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते अङ्गं नयति सन्नममानः, अक्नोपनो भवति इति स्थौलाष्ठीविः'* इत्यादि। अग्नि सभी पदार्थों को अपना अङ्ग बना

लेता है इत्यादि गुणों के कारण ही अग्नि शब्द से वाच्य है।

वर्तमान समय में भी विवाह, यज्ञ, हवन आदि कार्यों में अग्नि का प्रमुख स्थान रहता है। अग्नि प्रकाश का वाचक देवता है। जो अपने प्रकाश से अन्धकार को विदीर्ण कर देता है। ईशोपनिषद् के अनुसार अग्नि देवता मोक्ष प्रदान करने वाला है। सम्भवतः इसीलिये आवागमन रूप दक्षिण मार्ग से मुक्त होने के लिये अग्नि से प्रार्थना करता है।[23] कठोपनिषद् से ज्ञात होता है कि अग्नि चयन की पद्धति विशेष से यजमान स्वर्ग को भी प्राप्त कर सकता है। यमराज ने अग्नि चयन की उस पद्धति विशेष को त्रिणाचिकेत नाम दिया है।[24]

उपनिषद् काल में प्राकृतिक शक्तियाँ सम्भवतः अपने कर्तव्य मार्ग से कुछ विमुख हो जाया करती थी। उपनिषद् ऋषि के मत में इन प्राकृतिक शक्तियों को नियन्त्रित करने वाला चेतन ब्रह्म है। जो समय–समय पर इनके अहंकार को कम कर देता था। इसी प्रकार का उल्लेख केनोपनिषद् में प्राप्त होता है। जब वायु, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं में अपने कार्य के प्रति अहंकार आ गया था। तब ब्रह्म ने यक्ष के रूप में प्रकट होकर इन देवताओं का अहंकार नष्ट कर दिया। कठोपनिषद् में कहा गया है कि परमात्मा से भयभीत होकर अग्नि नियमित रूप से प्रकाश और ऊष्णता प्रदान करता रहता है। सूर्य और चन्द्रमा नियमित रूप से अपना कार्य करते रहते हैं, *'भयादस्याग्निः तपति...'*।[25]

मुण्डकोपनिषद् के अनुसार ज्वालाविहीन अग्नि में यदि कोई आहुति प्रदान करता है तो उसे उत्तम फल नहीं प्राप्त होते हैं। इसीलिए ज्वालायुक्त प्रदीप्त अग्नि में ही हवि डालने का विधान किया गया है। अग्नि की चार जिह्वायें प्रसिद्ध हैं– काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरूचि आदि अग्नि की सात चञ्चल जिह्वायें मानी गयी हैं।[26] इन्हीं के माध्यम से अग्नि आहुति का ग्रास करता है। छान्दोग्योपनिषद् में प्रसिद्ध स्वर्गलोक को अग्नि मानकर आह्वनीय, अग्निहोत्र और उसके विभिन्न भागों को बताया गया है। आदित्य उस द्युलोक का समिध है। जैसे समिध अग्निहोत्र को प्रदीप्त करता है। वैसे ही आदित्य द्युलोक को प्रदीप्त करता है। आदित्य से निकलने के कारण किरणें ही धूम हैं। प्रदीप्त समिध का कार्य होने के कारण दिन ही ज्वाला है। दिन रूपी ज्वाला बुझ जाने के बाद चन्द्रमा रूपी अङ्गार शेष रहता है। इधर–उधर बिखरे होने के कारण नक्षत्र ही विस्फुलिंग हैं।[27] अग्नि में भी तीन रूप होता है, रक्त, शुक्ल और कृष्ण रूप। अग्नि में जो रक्त रूप है वह तेजस् का है। शुक्ल रूप जल का भाग होता है तथा कृष्ण रूप अन्न से बना हुआ माना जाता है। अग्नि के इन्हीं तीनों रूपों को सत्य माना गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपनिषद् में भौतिक प्रकाश के रूप में सूर्य, चन्द्रमस्, नक्षत्र, तारे, विद्युत् और अग्नि का उल्लेख प्राप्त होता है। उपनिषद् ऋषियों ने इनके अधिष्ठान के रूप में चेतन देवताओं को माना है। इसी कारण जड़ होने पर भी कई जगहों पर चेतन रूप में प्राप्त होता है। प्रकाश के इन देवताओं का अपना–अपना लोक भी होता है। उपनिषद् में सूर्य और चन्द्रमा का प्रायः एक साथ उल्लेख प्राप्त होता है। सूर्य और चन्द्रमा के साथ–साथ अग्नि और विद्युत् के गुणों का भी उल्लेख है। कुछ जगहों पर सूर्य और चन्द्रमा को परमात्मा के दो नेत्र बताया गया है। साथ ही साथ ये दोनों प्रकाश स्रोत केवल भूलोक को ही नहीं अपितु तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। ये सभी प्रकाश स्रोत होने से स्वयं भी प्रकाशित होते हैं और वस्तुओं को भी प्रकाशित करते हैं। उपनिषद् ऋषियों ने इन सभी प्रकाश स्रोतों के मूल में परमात्मा को माना है। उपनिषद् ऋषि का पूर्ण विश्वास है कि सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत्, आदि में जो प्रकाशित करने की जो सामर्थ्य विद्यमान है। वह परमात्मा की शक्ति से प्राप्त होती है। परमात्मा से सामर्थ्य प्राप्त करके ये सभी प्रकाश स्रोत संसार को प्रकाशित करते हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

संदर्भ–

1. तै.उ.२.१.१
2. स.ध्या.यो.२६०
3. भ.गी.२.१६
4. वे.सा.२६
5. क.उ.२.१.६
6. छा.उ.३.१६.६
7. छा.उ.३.१६.६
8. क.उ.२.२.११
9. भ.गी.१५.१२
10. प्र.उ.२.५
11. प्र.उ.२.६
12. प्र.उ.५.५
13. प्र.उ.१.१.१
14. प्र.उ.१.८
15. छा.उ.३.१६.५
16. बृ.उ.३.६.३
17. छा.उ.१.६.४
18. मु.उ.२.१.४
19. ऐ.उ.१.१.४
20. केन.उ.४.४
21. छा.उ.४.१५.५
22. बृ.उ.५.८.१
23. ईश.उ. १८
24. कठ.उ.१.१.१४
25. कठ.उ.२.३.३
26. मु.उ.१.२.४
27. छा.उ.५.४.१